

# ज्ञान की ज़मीन और ज़मीनी ज्ञान अँधेरे में रेशनी की तलाश

हरजिन्दर सिंह

मैं आज जो बातें करने वाला हूँ, ये दरअसल हमारी सामूहिक चिन्ताएँ हैं। ज्ञान की ज़मीन यानी हमें ज्ञान कहाँ से और कैसे मिलता है, और जो कुछ हम जानते हैं, जिसे हम सच मानते हैं वह किस हद तक ठोस सचाई है, इस पर कुछ बातें साझा करूँगा। आम तौर पर तरक्की पसन्द तबकों में यह समझ होती है कि प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर, तर्कशील ढंग से ही हम सच जान पाते हैं, और यह सम्भव है कि हर कोई इस तरह से ही इल्म हासिल करे। जो कुछ प्रत्यक्ष दिखता है, जो दिख रहा है, वह सच ही होगा, ऐसा मान लेना स्वाभाविक है। पर साथ में क्या कुछ दिखने से छूट गया, अगर वह दिख जाए तो जो पहले दिख रहा था, उस बारे में हमारा निर्णय क्या होगा, ऐसा हम कम ही सोचते हैं। हमें क्या दिखे, इस पर कोई नियंत्रण भी हो, इसकी कल्पना सहज नहीं है, पर गहराई से सोचने पर शंकाएँ ज़रूर होती हैं।

इसलिए यह जानते हुए भी कि मेरे पास कहने को कोई खास मौलिक

बातें नहीं हैं, मैं यह हिमाकत कर रहा हूँ कि ज्ञान या सत्य-ज्ञान के बारे में कुछ बुनियादी बातों पर चर्चा की शुरुआत करूँ। ज्ञान-मीमांसा पर किताबों में उपलब्ध सामान्य जानकारी को अपनी कुछ बातों के साथ जोड़कर आपके सामने रख रहा हूँ। कई बातें मैंने फान-दे-लागेमाट की लिखी हाई स्कूल की एक किताब से ली हैं। जिस स्कूली पाठ्यचर्या में ज्ञान-मीमांसा शामिल है और यह किताब अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है, वह हमारे मुल्क में सिर्फ तीन सौ स्कूलों में लागू है। इंटरनेशनल बैकालारिएट नामक यह पाठ्यचर्या बहुत ही महँगे स्कूलों में लागू है और मैं मानता हूँ कि हमारे हर हाई-स्कूल में, जैसे सी.बी.एस.ई. की पाठ्यचर्या में यह विषय शामिल होना चाहिए। यह मैं पहले ही कह दूँ कि दक्षिण एशिया की, या जिसे आम तौर पर पूर्वी मुल्कों की ज्ञान-मीमांसा कहते हैं, मुझे इसका पर्याप्त ज्ञान नहीं है। इसलिए मैं न्याय दर्शन या वैशेषिक शास्त्र आदि के बारे में कुछ नहीं कहूँगा।

## ज्ञान: शंकाएँ

सत्य क्या है? ज्ञान की प्रकृति क्या है? क्या तर्कशीलता और विज्ञान में जिन पद्धतियों का इस्तेमाल होता है, वही हमें सत्य तक ले जाने के काबिल हैं? मानव विज्ञान और मानविकी का क्या महत्व है? उनमें और प्राकृतिक विज्ञान में क्या फर्क हैं? ज्ञान-विज्ञान से जुड़े लोगों के बारे में आम धारणा यह होती है कि वे बड़े काबिल लोग हैं और रोज़ाना के सामान्य सवालोंने से अलग, कुदरत और दुनिया के गम्भीर सवालोंने पर गहराई-से उलझने वाले लोग हैं। सच यह है कि बड़े-से-बड़ा ज्ञानी भी अन्ततः एक साधारण इन्सान ही होता है और अधिकतर ज्ञानीजन सामान्य सवालोंने पर काम करते हुए ही अपनी रोज़ी-रोटी कमाते हैं।

थॉमस हक्सले उन्नीसवीं सदी के आखिरी दौर के बड़े जीव विज्ञानी और चार्ल्स डार्विन द्वारा प्रस्तावित जैविक-विकास के सिद्धान्तों के कट्टर हिमायती थे। उन्हें 'डार्विन का बुलडॉग' कहा जाता था। उनका कहना है: विज्ञान 'संयोजित सामान्य समझ' है। आगे वे कहते हैं - "हम सब आदतन हर वक्त बेपरवाही से जिस तरीके का इस्तेमाल करते हैं, महज़ सटीक और सतर्कता के साथ विज्ञान-कर्म उसी का इस्तेमाल करते हैं।"

तो क्या सामान्य समझ ही ज्ञान की बुनियाद है? सचमुच ऐसा होता

तो कितना अच्छा होता। सामान्य समझ अपने आप में बड़ी ना-साफ-सी बात है, यह देश-काल पर निर्भर होती है और अक्सर विरोधाभासों से भरी होती है। जैसे 'जो दूर गया सो भूल गया' एक सामान्य समझ की बात है, पर साथ ही कई लोकप्रिय फिल्मी गीत इसी बात पर आधारित हैं कि छूट चुका प्रियजन भूला नहीं जाता।

मिसाल के तौर पर दुनिया का राजनैतिक नक्शा - इसे मर्केटर अंकन कहते हैं - देखें। हमने पाँचवीं-छठी जमात में इसे देखा-पढ़ा है। इस तरह यह हमारे सामान्य बोध का हिस्सा बन चुका है।

नक्शे में क्या गलत है? आप तकनीकी बातों की ओर ध्यान दिला सकते हैं, कि हो सकता है पुराना नक्शा हो या अक्षांश-देशान्तर की रेखाएँ सही न हों, आदि। पर असल समस्या, जो तकनीकी है, यह है कि तीन आयामों को सपाट द्वि-आयामी धरातल पर आँका गया है। इस प्रक्रिया में कुछ भू-भाग अपने आकार से बड़े और कुछ छोटे दिखते हैं। चूँकि आधुनिक नक्शाकारी का इल्म यूरोप से आया है, इस वजह से यूरोप केन्द्र में है; यूरोप का भू-भाग भारत से तकरीबन ढाई-तीन गुना ज़्यादा दिखता है, ग्रीनलैंड और एंटार्क्टिका अपने सही आकार से कहीं ज़्यादा बड़े दिखते हैं। महज़ तकनीकी कारणों से यूरोप का भू-भाग अपने सही आकार से कहीं ज़्यादा दिखता है। पर क्या यह चयन



चित्र-1



चित्र-2

**चित्र-1:** दुनिया का पीटर्स प्रोजेक्शन नक्शा। पीटर एवं होबो-डायर प्रोजेक्शन में क्षेत्रफल का अनुपात सही होता है, परन्तु भौगोलिक आकृतियाँ सटीक नहीं होतीं।

**चित्र-2:** सामान्य तौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले मर्कटर प्रोजेक्शन पर आधारित नक्शे। भौगोलिक आकृतियाँ सही होती हैं इसमें, परन्तु क्षेत्रफल अनुपात बहुत ही गलत हो सकता है - विशेष तौर पर भूमध्य रेखा से पास और दूर के इलाकों में तुलना करने पर। 9.7 मिलियन वर्ग कि.मी. वाला यूरोप, दक्षिण अमेरिका से बड़ा प्रतीत होता है जो कि वास्तव में यूरोप के आकार से दोगुना है। वैसे ही सोवियत यूनियन अफ्रीका से बड़ा प्रतीत होता है जो वास्तव में अफ्रीका से छोटा है। ऊपर वाले नक्शे को देखने पर ये दोनों विसंगतियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं।

सचमुच महज़ तकनीकी है? क्या इसके पीछे कोई बौद्धिक आग्रह नहीं है? क्या यहीं से यूरोकेन्द्रिक सोच की शुरुआत होती है?

नक्शा बनाने का एक और तरीका होता है, जिसे होबो-डायर अंकन कहते हैं। इसमें हर भू-भाग को उसके सही क्षेत्रफल के अनुपात में दिखाया जाता है। इसे देखें तो इसमें अफ्रीका सबसे बड़ा भू-भाग दिखेगा। भारत और यूरोप क्षेत्रफल में तकरीबन बराबर दिखने लगेंगे।

नक्शाकारी में और भी कई सवाल हैं। धरती महाकाश में एक ग्रह है। इसे ऊपर-नीचे, कहीं से भी देख सकते हैं। इसलिए यह तय करना कि कौन-सी दिशा ऊपर की ओर होगी, कौन-सी नीचे की ओर, यह सब भी हमारे पूर्वगृहों पर निर्भर करता है। 'ऊपर' और 'नीचे' ऐसे शब्द हैं, जो हमारे मूल्य-बोध से अछूते नहीं हैं, जैसे ईश्वर की जगह हमेशा ऊपर होती है और

दानवों या नराधमों की जगह नीचे।

**नक्शाकारी की सीमा:** 'चूँकि नक्शा हूबहू नकल नहीं होता, बल्कि मूल भू-भाग की एक बौनी प्रतिकृति मात्र होता है, इसलिए वह हमारे काम आता है।' यह सम्भव नहीं है कि हम धरती को जानने के लिए उसकी एक हूबहू नकल सामने रखें। हमें छोटे-से नक्शे से ही काम चलाना पड़ता है।

ज्ञान पर चर्चा करते हुए हमें यह नारा ध्यान में रखना चाहिए: *नक्शा असल भू-भाग नहीं होता।* यह बात केवल भूगोल के लिए ही नहीं, बल्कि ज्ञान के किसी भी क्षेत्र के लिए लागू होती है। हम जो कुछ जानते हैं, वह दरअसल ज़हन में सच्चाई का महज़ एक नक्शा होता है। कोई ज़रूरी नहीं कि यह हमेशा बिलकुल वही हो, जो सच्चाई है। इतिहास पर तो यह बात गम्भीर विवादों तक चली जाती है। इसलिए सरकार बदलते ही फिर से इतिहास लिखे जाने की कोशिश



**चित्र-3:** रेने मार्गरीट द्वारा बनाई गई तस्वीर जिसका शीर्षक था 'तस्वीरों का धोखा'।

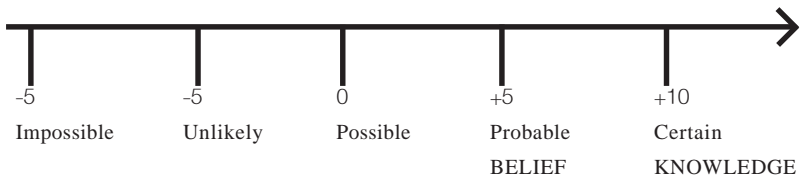
दिखलाई पड़ती है। ज़ाहिर है कि इतिहास पर हर अलग नज़रिया सही नहीं हो सकता। हावर्ड ज़िन ने अपनी प्रसिद्ध किताब, *पीपल्स हिस्ट्री ऑफ़ द यूनाइटेड स्टेट्स* के पहले अध्याय में इस पर विस्तार से लिखा है - 'यह सच है कि हर इतिहास लेखक को कुछ तथ्यों को नज़रअन्दाज़ करना पड़ता है, जैसे एक नक्शाकार को पृथ्वी की आकृति को कागज़ पर चपटा दिखलाना पड़ता है और फिर उस चपटे चित्र से आवश्यक भौगोलिक सूचनाएँ चुननी पड़ती हैं ... चयन या सरलीकरण ... पर वज़न डालना गलत नहीं है। पर नक्शाकार को एक तकनीकी सीमा की वजह से नक्शे को विकृत करना पड़ता है और इसे सभी नक्शा देखने वाले समझते हैं। इतिहास लेखकों द्वारा किया गया तोड़-मरोड़ तकनीकी कारणों से नहीं, सैद्धान्तिक कारणों से होता है। ऐसी दुनिया में, जहाँ अलग-अलग शक्तियाँ काम कर रही हों, यह तोड़-मरोड़ चाहे-अनचाहे किसी एक स्वार्थ का, आर्थिक या राजनैतिक या जाति-विशेष या लिंग-विशेष का समर्थन करती है। ...ये सैद्धान्तिक स्वार्थ, इतने खुले रूप में सामने नहीं आते, जैसे कि नक्शाकार का नक्शे को अलग ढंग

से दिखलाने का तकनीकी कारण स्वतः स्पष्ट हो जाता है...।'

बीसवीं सदी की शुरुआत में बेल्जियम के सर्रीयल चित्रकार रेने मार्गरीट ने एक तस्वीर बनाई, जिसमें वह पाइप दिखता है, जिसे हमारे सम्माननीय मैनेजर पंडेजी हमेशा सुलगाते रहते हैं, और उसके नीचे फ्रांसीसी भाषा में लिख दिया - यह पाइप नहीं है। तो सोचिए कि वह क्या है।

सही जवाब यह है कि वह पाइप नहीं, बल्कि पाइप की तस्वीर है। इस तस्वीर का शीर्षक था - 'तस्वीरों का धोखा'।

**निश्चितता:** (प्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्रैंड रसेल (जिनका दर्शन के अलावा गणित और साहित्य में भी बहुत काम है, उनको 1950 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिला था) ने कहा है - "दरअसल हम लोग ज्ञान नहीं, निश्चितता चाहते हैं।" निश्चित ज्ञान क्या है? दो और दो का चार होना निश्चित ज्ञान है। पर एक हाथ और दूसरा हाथ मिलकर ताली बजाते हैं। क्या एक हाथ आधी ताली बजा सकता है? वैसे कई अर्थों में दो और दो चार नहीं भी हो सकते हैं। मसलन, भूखे



पेट दो रोटी खाकर जो सुकून मिलता है, पेट भरा हो तो दो और रोटी खाने पर दुगुना सकून मिले, ऐसा नहीं होता।

आम तौर पर हम किसी विषय में कुछ लोगों को माहिर मान लेते हैं और उस विषय पर उनके मत को ही निश्चित ज्ञान मानते हैं। बीसवीं सदी के महान वैज्ञानिकों में से एक रिचर्ड फाइनमैन का कहना है - “एक्सपर्ट लोगों की अज्ञानता को मानना ही विज्ञान है।” एक्सपर्ट यानी माहिर कौन है? जो ज्ञानी है। तो एक्सपर्ट की अज्ञानता कैसे हो सकती है? सोचने की बात है। जब फाइनमैन जैसा वैज्ञानिक यह बात कहता है तो हमें सोचना पड़ेगा कि ज्ञानी होना या किसी को ज्ञानी मानना समस्याएँ पैदा करता है। फाइनमैन शायद विज्ञान में सवाल उठाते रहने की ताकत की ओर संकेत कर रहे थे। पर बात आम तौर पर रोचक है। अँग्रेज़ी के प्रख्यात नाटक लेखक पीटर उस्तीनोव का रोचक कथन है - “जब दुनिया तबाह हो रही हो तो आखिरी आवाज़ किसी एक्सपर्ट की सुनाई देगी कि ऐसा असम्भव है।”

दरअसल, हम जिसे सत्य ज्ञान मानते हैं, वह अक्सर हमारी आस्था मात्र होता है।

**सामान्य मान्यताएँ:** अपने ज्ञान को हम तीन तरह से देख सकते हैं -

- मैं जानता हूँ;
- मैं मानता हूँ;
- मैं तर्क और प्रमाण के ज़रिए बातें समझकर मानता हूँ।

बर्ट्रैंड रसेल ने कहा है, “इन्सान यकीन करने के लिए तड़पता है, किसी बात को मान लेने के सही तर्क न हों तो वह गलत तर्क ढूँढ़ लेता है।”

### विश्वास/मान्यता, सत्य-ज्ञान और हम

महज़ मान्यता और सत्य-ज्ञान के बीच सतत निरन्तर दूरी है। हम अपने आपको इसी दरमियान कहीं खड़ा पाते हैं। एक छोर पर यह सत्य ज्ञान है कि कोई बात बिलकुल गलत है, जैसे दो और दो मिलकर तीन - यह जानना कि यह गलत है, यह भी एक सत्य-ज्ञान है। दूसरे छोर पर बिलकुल सही बात पर आधारित सत्य ज्ञान है। जैसे मैं और आप इन्सान हैं, यह सच है। दो और दो मिलकर चार हो सकते हैं, यह सच है। ठीक बीच में ज्ञानहीनता की स्थिति है। अगर हर मान्यता को ज्ञान कहा जाए तो तीन तरह के ज्ञान हो सकते हैं -

- ख्याली ज्ञान
- सबूतों पर आधारित ज्ञान
- ऐसा ज्ञान, जिसमें लेशमात्र भी सन्देह की गुंजाइश नहीं हो। मसलन, सज़ा-ए-मौत देते हुए काज़ी को यह कहना पड़ता है कि इसमें ज़रा भी शक नहीं है कि अपराधी ने जघन्यतम अपराध किया है।

चूँकि यह तकरीबन नामुमकिन है कि हम इस हद तक पहुँच सकें कि ज़रा भी शक की गुंजाइश न रहे, इसलिए दुनिया के ज़्यादातर मुल्कों में मौत की सज़ा नहीं दी जाती है।

## ज्ञान के स्रोत: ज्ञान बनाम सूचना

ज्ञान के प्राथमिक स्रोत यानी हम ज्ञान कैसे पाते हैं:

- मेरी सामान्य समझ जो कहती है;
- जो कुछ मैं भाषा के माध्यम से जान पाता हूँ;
- जो मैं ऐन्द्रिक एहसासों से (या मशीनों) से जान पाता हूँ;
- जिसे मैं तर्क शक्ति के ज़रिए जानता हूँ;
- जो भावनात्मक रूप से मेरी सोच में जुड़ता है।

हम ज्ञान के प्राथमिक स्रोतों के बारे में कम ही सोचते हैं, क्योंकि हमें बचपन से इनकी आदत पड़ चुकी होती है। पर इनसे अलग सूचना के बृहत्तर स्रोत हमें ज्ञान के स्रोत होने का गलत एहसास देते हैं। सूचना-मात्र ज्ञान नहीं होता। हमें कई स्रोतों से बृहत्तर सूचनाएँ मिलती हैं, जैसे -

- किसी और से ज्ञान का मिलना (ज्ञानी-विज्ञानी, बाबा, गुरु आदि)

• परम्परा

• स्कूल

• इंटरनेट, मीडिया आदि

इन सभी स्रोतों की सीमाएँ हैं।

अब ज्ञान पाने के प्राथमिक साधनों के बारे में गहराई-से सोचा जाए।

### 1. भाषा

- अमेरिकी बुद्धिजीवी नील पोस्टमैन मानते हैं कि - “जिसे तालीम कहते हैं, वह तकरीबन पूरी तरह से जुबान की तालीम होती है।”

• प्रख्यात मनोवैज्ञानिक लेव-वाइगोत्स्की ने जीवन भर शोध कर यह निष्कर्ष निकाला कि - “विचार महज़ अल्फाज़ में सजाई बातें नहीं हैं, वह उन्हीं (अल्फाज़) के ज़रिए ही आ पाते हैं।” और अल्फाज़ हमें अपनी जुबान से मिलते हैं, जो हमारे घर परिवार में बोली जाती है।

- अमेरिकी भाषाविद एडवर्ड सापिर और बेंजामिन ह्योर्फ के नाम पर जानी जाती सापिर-ह्योर्फ प्रस्तावना है - ‘जुबान ही सचाई से हमारा परिचय करवाती है। हम वही देख या सोच सकते हैं जो हमारी जुबान हमें दिखा या सिखा पाती है।’ यानी भाषा का महत्व आँका नहीं जा सकता है। हमारी बदकिस्मती है कि मुल्क के इल्मदाँ लोग इस बात पर ख़ुब बहस-मशविरा करते हैं, पर अंग्रेज़ी में।

भाषा जटिल परिघटना है - नियमों में बँधी; अर्थ समेटे; क्रिएटिव और खुली। अक्सर आम भाषा में कही बातें अस्पष्ट और अनेकार्थी होती हैं - क्या अस्पष्टता समस्या है या विशिष्टता है?

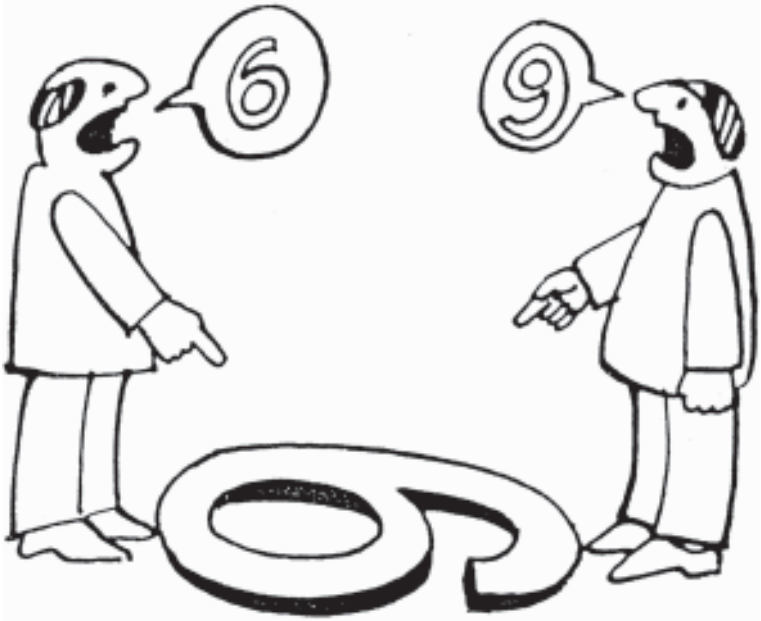
मिसाल के तौर पर ‘सपना’ शब्द को लें। इसके कई अर्थ हो सकते हैं -

- नींद की हालत में अलग-अलग स्थितियों में बिना किसी रोक के दिमाग में आती तस्वीरें, खयाल, एहसास आदि
- दिवास्वप्न; कल्पना में खो जाना
- अमूर्त मनस्थिति; विक्षिप्तता
- खयाली उड़ान या उम्मीद

- सफलता का लक्ष्य; आकांक्षा
  - सुकून देने वाला, खूबसूरत, लाजवाब
- अब हम सोचें कि कवियों ने 'सपना' शब्द का कैसा इस्तेमाल किया है। गोरख पांडे की 'सपन मनभावन', पाश की 'सबसे खतरनाक होता है सपनों का मर जाना' और कुमार विकल की 'स्वप्न घर' कविताओं में इस शब्द का उपयोग देखें। लैंग्स्टन ह्यूज़ की प्रसिद्ध कविता 'हार्लेम' में हर पंक्ति में सपना अलग अर्थ लिए आता है। ऐसा कहा जा सकता है कि अस्पष्ट और अनेकार्थी होने की वजह से ही

हम इन कविताओं में से उन सभी सामाजिक राजनैतिक-ऐतिहासिक बातों को जान पाते हैं, जिनके लिए ये कविताएँ जानी जाती हैं। अगर कोई एक विशेष अर्थ लिए ही हर लफ्ज़ का इस्तेमाल हो तो मानव विज्ञान और मानविकी में बहुत सारी बातें गायब हो जाएँगी। इसलिए मानविकी में ये अस्पष्टताएँ ज़रूरी हैं।

विज्ञान की भाषा में स्पष्टता का होना लाज़िम माना जाता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों और परिमाणीकरण की भाषा गणित है। गणित में अस्पष्टता की



चित्र-4: आनुभूतिक भ्रम पर आधारित एक चित्र।



गुंजाइश नहीं होती है।

सामान्य भाषा में जटिल वाक्यों को समझने में परेशानी होती है, जैसे 'मेज़ पर कल जावेद के देख लेने पर हरप्रीत का छोड़ा हुआ पिछले दिन बाज़ार से लाया लड्डू मैंने बिना खाए रख दिया था' वाक्य को सुनकर इसका मतलब समझने के लिए देर तक सोचना पड़ता है, पर मिडिल स्कूल में अलजेब्रा सीखे किसी भी बच्चे के लिए '[B +(M +(G +I .E)S)L] I +T' जैसी राशि का समाधान आसान बात है।

वैज्ञानिक पद्धति और औज़ारों के लिए इस्तेमाल की जाने वाली तकनीकी शब्दावली में सब कुछ स्पष्ट होना ज़रूरी माना जाता है।

**2. ऐन्द्रिक एहसास:** पाँच इन्द्रियों से भौतिक जगत की जानकारी

अक्सर हमें ऐसे आइने मिलते हैं, जहाँ लिखा होता है कि आइने में दिखती चीज़ों का सही आकार से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह बात हमारे किसी भी तरह के एहसास पर लागू हो सकती है।

• दृष्टिहीन और कानों से सुनने में अक्षम हेलेन केलर ने, जिसने कमाल की काबिलियत दिखलाई और कॉलेज की डिग्री हासिल की, कहा है - "दृष्टिहीन होना सबसे बड़ी विडम्बना नहीं है, बल्कि सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि आँखें होते हुए भी हम सच्चाई नहीं देख पाते हैं।" मतलब यह कि जो हम देखते हैं, उसमें

बहुत कुछ अनदेखा रह जाता है।

• संज्ञान पर शोध करने वाले जाने-माने विज्ञानी स्टीवेन पिकर के अनुसार - "मनोविज्ञान में माना जाता है कि ऐन्द्रिक एहसास हमें जैविक-विकास के ज़रिए अनुकूलन से मिले हैं - ताकि कुदरती चयन में हम खारिज न हो जाएँ।" यानी हमारी प्रजाति के बने रहने के लिए हमें खास तरह के एहसास मिले हैं। अन्य जानवरों में भी खास एहसास होते हैं, जैसे चमगादड़ इन्फ्रारेड किरणों का इस्तेमाल कर अँधेरे में देख सकते हैं।

**आनुभूतिक भ्रम (perceptual illusions):** मैंने आइने का ज़िक्र किया, पर सिर्फ आँखें ही नहीं, हमारी हर इन्द्रिय हमें धोखा दे सकती है। माध्यमिक स्तर की विज्ञान शिक्षा में ताप या ऊष्मा और तापमान को समझाने के लिए एक प्रयोग किया जाता है। तीन बर्तन लें। बाएँ बर्तन में गर्म, दाएँ में ठण्डा और बीच के बर्तन में सामान्य तापमान का पानी है। अपने बाएँ हाथ को बाएँ बर्तन में डालें, फिर वहाँ से निकालकर बीच वाले बर्तन में डालें, पानी हमें गर्म लगता है। इसी तरह दाएँ बर्तन में दायें हाथ डालें और फिर निकालकर बीच वाले बर्तन में डालें, पानी हमें ठण्डा लगता है। यानी एक ही तापमान पर मौजूद पानी हमें गर्म या ठण्डा लग सकता है, यह निर्भर करता है कि हम कहाँ से आ रहे हैं।

## पृष्ठभूमि तय करती है कि एहसास कैसा होगा

पहली सदी ईस्वी पूर्व रोमन चिन्तक मार्कस ऑरेलियस का कहना है - “जो कुछ भी हम सुनते हैं, वे महज़ खयाल हैं, जो भी हम देखते हैं, वह महज़ एक परिप्रेक्ष्य है, सत्य नहीं।”

प्रत्यक्ष ऐन्द्रिक एहसास से मिले ज्ञान के बारे में कुछ सामान्य बातें हम कह सकते हैं:

- जगत हमें अनुभूतियाँ देता है;
- हमारे दिमाग उनकी व्याख्या करते हैं;
- हर समझ का अपना प्रसंग होता है;
- हमारी अपेक्षाएँ समझ को प्रभावित करती हैं;
- हमारा अवचेतन हमारी समझ को प्रभावित करता है;
- उपलब्ध जानकारीयों में से चयन की प्रक्रियाओं के ज़रिए हम समझ बनाते हैं।

‘जो देखा उसे माना’, यह प्रत्यक्ष ज्ञान का आधार है, पर अक्सर इसकी जगह ‘जो माना वही देखा’ हम पर हावी हो जाता है। ‘अवचेतन’ और

‘अपेक्षाएँ’, ये दो बातें यहाँ गौरतलब हैं। दोनों ही हमारी पृष्ठभूमि और पूर्वाग्रहों पर निर्भर हैं।

जिन बातों को हम प्रत्यक्ष ऐन्द्रिक एहसास से नहीं जान पाते हैं, उन्हें हम यंत्रों के सहारे जानते हैं। जैसे हम सीमित तरंगदैर्घ्य (वेवलेंथ) के बीच ही प्रकाश देख पाते हैं। लाल रंग की किरणों से अधिक वेवलेंथ (इन्फ्रारेड) और बैंगनी किरणों से कम वेवलेंथ (पराबैंगनी) किरणों को हम नहीं देख सकते, पर यंत्र हमें इन किरणों को देख पाने में मदद करते हैं। इसी तरह सुनी जाने वाली ध्वनि की आवृत्ति (फ्रीक्वेंसी) की भी सीमाएँ हैं, पर सोनार जैसे यंत्र हमें इसके पार ले जाते हैं। परन्तु ऐसे कई उदाहरण हैं, जब यंत्रों ने भी धोखा दिया है। मसलन, 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में वैज्ञानिकों ने सूरज और बुध के बीच एक और ग्रह ‘वल्कन’ ढूँढ़ लिया। तीस साल तक इसे मानते रहने के बाद साबित हुआ कि यह भ्रम था। विज्ञान के इतिहास में ऐसी मिसालें भरी हुई हैं।

...जारी

**हरजिन्दर सिंह:** सेंटर फॉर कम्प्यूटेशनल नेचुरल साइंस एंड बायोइन्फॉर्मेटिक्स, आई.आई.आई.टी., हैदराबाद में प्रोफेसर। प्रिंसटन यूनिवर्सिटी, न्यू यॉर्क, यूएसए से पीएच.डी.। सन् 1987-88 में *एकलव्य* के साथ यूजीसी द्वारा *स्पेशल टीचर फ़ैलोशिप* पर हरदा में रहे।

यह लेख उनके कुबेर दत्त स्मृति व्याख्यान (20 नवम्बर 2016, गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली) पर आधारित है।